10
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
(जन्म : 1850 ई. / मृत्यु : 1885 ई.)

जीवन परिचय –

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म सन् 1850 में काशी के एक प्रतिष्ठित और धनी परिवार में हुआ था। उनके पिता श्री गोपालचन्द्र भी हिन्दी के अच्छे कवि थे। भारतेन्दु जी के बाल्यकाल में ही उनके पिता का आकस्मिक देहावसान हो गया और वे उस विपुल सम्पत्ति के एक मात्र उत्तराधिकारी रह गए। उन्होंने अपनी सम्पत्ति लोकसेवा और साहित्य सेवा के कार्यों में लगा दी। उनके द्वारा स्थापित किया हुआ हाई स्कूल बनारस में अब हरिश्चन्द्र कॉलेज के नाम से चल रहा है। वे जन्म से ही कुशाग्र बुद्धि और प्रतिभाशाली थे। कविता करने का शौक भी उन्हें बचपन से ही था। 16 वर्ष की आयु होने पर तो उन्होंने ग्रन्थ रचना आरम्भ कर दी। लगभग 35 वर्ष की अल्प आयु में ही सन् 1885 ई. में उनका स्वर्गवास हो गया।

भारतेन्दु को वर्तमान हिन्दी गद्य का प्रवर्तक माना जाता है। भाषा और साहित्य दोनों पर उनका स्थायी प्रभाव पड़ा है। उन्होंने गद्य की भाषा को परिमार्जित कर उसे मधुर और स्वच्छ बनाया। वे सुधारवादी थे। प्राचीन और नवीन का सामंजस्य भारतेन्दु जी की सबसे बड़ी विशेषता रही है।

आपकी भाषा में संस्कृत के तद्भव शब्दों की ही बहुतायत है। लोकोक्तियाँ और मुहावरों के प्रयोग से उनकी भाषा में और भी लालित्य आ गया है। स्थान–स्थान पर रोचकता बढ़ाने के लिए उन्होंने हास्य और व्यंग्य के भी प्रयोग किए हैं।

उनकी देश सेवा और साहित्य सेवा से प्रभावित हो उस युग की जनता ने उन्हें 'भारतेन्दु' की उपाधि से सुशोभित किया।

इन्होंने कविवचनसुधा, हरिश्चन्द्र मैगजीन का सम्पादन किया। भारतेन्दु ने कुल मिलाकर 175 ग्रन्थ लिखे हैं, जिनमें बहुत–से केवल अनुवाद ही हैं। इनके द्वारा लिखे जिन नाटकों का हिन्दी संसार में बड़ा आदर है; उनमें वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, कर्पूर मंजरी, सत्य हरिश्चन्द्र, चन्द्रावली नाटिका, भारत दुर्दशा, अंधेर नगरी, नीलदेवी, मुद्राराक्षस आदि बहुत प्रसिद्ध हैं।

पाठ परिचय –

प्रस्तुत निबंध भारतेन्दुजी की विनोद–प्रिय प्रवृत्ति का प्रतिनिधि उदाहरण है। इसमें उन्होंने तत्कालीन समाज का एक व्यंग्यपूर्ण चित्र अपनी हास्य–व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। संसार में प्रत्येक मनुष्य अपने यश के लिए क्या–क्या प्रयत्न करता है, वह अपना नाम अमर करने के लिए किस प्रकार लालायित रहता है – यही इस पाठ का वर्ण्य विषय है।

समाज धर्मान्धता, स्वार्थपरता तथा अंग्रेजी शासन की अत्याचारपूर्ण नीति से किस प्रकार जर्जरित हो गया था तथा शिक्षा के पवित्र क्षेत्र में भी लोग क्या सोचते थे, इन बातों का व्यंग्यमय चित्र यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

एक अदभुत अपूर्व स्वप्न

आज रात्रि को पर्यंक पर जाते ही अचानक आँख लग गई। सोते में सोचता क्या हूँ कि इस चलायमान शरीर का कुछ ठिकाना नहीं। इस संसार में नाम स्थिर रखने की कोई युक्ति निकल आवे तो अच्छा है, क्योंकि यहाँ की रीति देख मुझे पूरा विश्वास होता है कि इस चपल जीवन का क्षण–भर का भरोसा नहीं। ऐसा कहा भी है –

स्वाँस स्वाँस पर हरि भजो वृथा स्वाँस मत खोय ।
न जाने या स्वाँस को आवन होय न होय ।।

देखो समय सागर में एक दिन सब संसार अवश्य मग्न हो जायेगा। कालवश शशि सूर्य भी नष्ट हो जायेंगे। आकाश में तारे भी कुछ काल पीछे दृष्टि न आवेंगे। केवल कीर्ति–कमल संसार–सरोवर में रहे वा न रहे, और सब तो एक तप्त तवे की बूँद हुए बैठे हैं। इस हेतु बहुत काल तक सोच समझ प्रथम यह विचार किया कि कोई देवालय बनाकर छोड़ जाऊँ, परन्तु थोड़ी ही देर में समझ में आ गया कि इन दिनों की सभ्यता के अनुसार इससे बड़ी कोई मूर्खता नहीं, और यह तो मुझे भली भाँति मालूम है कि यही अँग्रेजी शिक्षा रही तो मन्दिर की ओर मुख फेर कर भी कोई नहीं देखेगा। इस कारण विचार का परित्याग करना पड़ा। फिर पड़े–पड़े पुस्तक रचने की सूझी। परन्तु इस विचार में बड़े काँटे निकले क्योंकि बनाने की देर न होगी कि कीट 'क्रिटिक' काट कर आधी से अधिक निगल जायेंगे। यश के स्थान पर शुद्ध अपयश प्राप्त होगा। जब देखा कि अब टूटे–फूटे विचारों से काम नहीं चलेगा, तब लाड़िली नींद को दो रात पड़ोसियों के घर भेज आँख बन्द कर शम्भु की–सी समाधि लगा गया, यहाँ तक कि इकसठ वा इक्यावन वर्ष उसी ध्यान में बीत गए। अन्त को एक मित्र के बल से अति उत्तम बात की पूँछ हाथ में पड़ गई। स्वप्न ही में प्रभात होते ही पाठशाला बनाने का विचार दृढ़ किया। परन्तु जब थैली में हाथ डाला तो केवल ग्यारह गाड़ी ही मुहरें निकलीं। आप जानते हैं इतने में मेरी अपूर्व पाठशाला का एक कोना भी नहीं बन सकता था। निदान अपने इष्ट मित्रों की भी सहायता लेनी पड़ी। ईश्वर को कोटि धन्यवाद देता हूँ जिसने हमारी ऐसी सुनी। यदि ईटों के ठोर मुहर चुनवा लेते तब भी तो दस पाँच रेल रूपये और खर्च पड़ते। होते–होते सब हरि कृपा से बन कर ठीक हुआ। इसमें व्यय हुआ वह तो मुझे स्मरण नहीं है, परन्तु इतना अपने मुन्शी से मैंने सुना था कि एक का अंक और तीन सौ सत्तासी शून्य अकेले पानी में पड़े थे। बनने को तो एक क्षण में सब बन गया था, परन्तु उसके

जोड़ने में पूरे पच्चीस वर्ष लगे। जब हमारी अपूर्व पाठशाला बन कर ठीक हुई, उसी दिन हमने हिमालय की कन्दराओं में से खोज–खोज कर अनेक उद्दण्ड पंडित बुलवाये, जिनकी संख्या पौन दशमलव से अधिक नहीं है। इस पाठशाला में अनगिनत अध्यापक नियत किये गये, परन्तु मुख्य केवल ये हैं, पंडित मुग्धमणि शास्त्री तर्क वाचस्पति, प्रथम अध्यापक। पाखंडप्रिय धर्माधिकारी, अध्यापक धर्मशास्त्र। प्राणान्तकप्रसाद वैयाकरण अध्यापक वैद्यकशास्त्र। लुप्तलोचन ज्योतिषाभरण, अध्यापक ज्योतिष शास्त्र। शीलदावानल नीतिदर्पण, अध्यापक नीतिशास्त्र और आत्मविद्या।

इन पूर्वोक्त पण्डितों के आ जाने पर अर्ध रात्रि गये पाठशाला खोलने बैठे। इस समय सब इष्ट मित्रों के सम्मुख उस परमेश्वर को कोटि धन्यवाद दिया, जो संसार को बनाकर क्षण भर में नष्ट कर देता है, और जिसने विद्या, शील, बल के सिवाय मान, मूर्खता, परद्रोह, परनिन्दा आदि परम गुणों से इस संसार को विभूषित किया है। हम कोटि धन्यवादपूर्वक आज इस सभा के सम्मुख अपने स्वार्थरत चित्त की प्रशंसा करते हैं जिसके प्रभाव से ऐसे उत्तम विद्यालय की नींव पड़ी। उस ईश्वर को ही अंगीकार था कि हमारा इस पृथ्वी पर कुछ नाम रहे, नहीं तो जब द्रव्य की खोज में डूबते–डूबते बचे थे तब कौन जानता था कि हमारी कपोल–कल्पना सत्य हो जायगी। परन्तु ईश्वर के अनुग्रह से हमारे सब संकट दूर हुए और अन्त समय हमारी अभिलाषा पूर्ण हुई। हम अपने इष्ट मित्रों की सहायता को भी न भूलेंगे कि जिनकी कृपा से इतना द्रव्य हाथ आया कि पाठशाला का सब खर्च चल गया और दस पाँच पीढ़ी तक हमारी सन्तान के लिए बच रहा। हमारे पुत्र, परिवार के लोग चैन से हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे। हे सज्जनो, यह तुम्हारी कृपा का विस्तार है कि तन मन से आप इस धर्म–कार्य में प्रवृत्त हुए, नहीं मैं दो हाथ पैर वाला बेचारा मनुष्य आपके आगे कौन कीड़ा था जो ऐसे दुष्कर कर्म को कर लेता? यहाँ तो घर की केवल मूँछें ही मूँछें थीं। कुछ में कुछ गंगाजल, काम आपकी कृपा से भली–भाँति हो गया। मैं आज के दिन को नित्यता का प्रथम दिन मानता हूँ, जो औरों को अनेक साधन से भी मिलना दुर्लभ है। धन्य है उस परमात्मा को जिसने हमारे यश के डहडहे अंकुर फिर हरे किये। हे सज्जन शुभचिन्तको ! संसार में पाठशालाएँ अनेक हुई होंगी, परन्तु हरि कृपा से जो सकलपूर्ण कामधेनु यह पाठशाला है वैसी, अचरज़ नहीं कि आपने इस जन्म में न देखी सुनी हो। होनहार बलवान है, नहीं तो कलिकाल में ऐसी पाठशाला का बनाना कठिन था। देखिए, यह हम लोगों के भाग्य का उदय है कि ये महामुनि मुग्धमणि शास्त्री बिना प्रयास हाथ लग गये जिनको सतयुग के आदि में इन्द्र अपनी पाठशाला के निमित्त समुद्र और वन जंगलों में खोजता फिरा, अन्त को हार मान वृहस्पति को रखना पड़ा। हम फिर भी कहते हैं कि यह हमारे भाग्य की महिमा थी कि ये ही पण्डितराज मृगयाशील श्वान के मुख में शशी के धोखे बद्रिकाश्रम की एक कन्दरा में से पड़ गये। इनकी बुद्धि और विद्या की प्रशंसा करने में सरस्वती भी लजाती है। इसमें संदेह नहीं कि इनके थोड़े ही परिश्रम से पण्डित मूर्ख और अबोध पण्डित हो जायेंगे।

हे मित्र ! मेरे निकट जो महाशय बैठे हैं इनका नाम पाखण्डप्रिय है। किसी समय इस देश में इनकी बड़ी मानता थी। सब स्त्री पुरूषों को इन्होंने मोह रक्खा था। परन्तु अब कालचक्र के मारे अँगरेजी पढ़े हिन्दुस्तानियों ने इनकी बड़ी दुर्दशा की। इस कारण प्राण बचाकर हिमालय की तराई में हरित दूर्वा पर सन्तोष कर अपना कालक्षेप करते थे। विपत्ति ईश्वर किसी पर न डाले। जब तक इनका राज था, दृष्टि बचाकर भोग लगाया करते थे। कहाँ अब श्वान–श्रृंगाल के संग दिन काटने पड़े। परन्तु फिर भी इनकी बुद्धि पर पूरा विश्वास है कि एक कार्तिक मास भी इनको स्थिर रह जाने देंगे तो हरि कृपा से समस्त नवीन धर्मों पर चार–पाँच दिन में पानी फेर देंगे।

इनसे भिन्न, पण्डित प्राणांतकप्रसाद भी प्रशंसनीय पुरूष हैं। जब तक इस घट में प्राण है तब तक न किसी पर इनकी प्रशंसा बन पड़ी, न बन पड़ेगी। ये महावैद्य के नाम से इस संसार में विख्यात हैं। चिकित्सा में ऐसे कुशल हैं कि चिता पर चढ़ते–चढ़ते रोगी इनके उपकार का गुण नहीं भूलता। कितना ही रोग से पीड़ित क्यों न हो, क्षण भर में स्वर्ग के सुख को प्राप्त होता है। जब तक औषधि नहीं देते केवल उसी समय तक प्राणी के संसारी विथा लगी रहती है। आप लोग कुछ काल की अपेक्षा कीजिये। इनकी चिकित्सा और चतुराई अपने आप प्रकट हो जायेगी। यद्यपि आपके अमूल्य समय में बाधा हुई, परन्तु यह भी स्वदेश की भलाई का काम था, इस हेतु आप आतुर न हूजिये और शेष अध्यापकों की अमृतमय जीवन कहानी श्रवण कीजिए।

ये लुप्तलोचन ज्योतिषाभरण बड़े उद्दण्ड पण्डित हैं। ज्योतिष विद्या में अति कुशल हैं। कुछ नवीन तारे भी गगन में जाकर ये ढूँढ़ आये हैं और कितने ही नवीन ग्रन्थों की भी इन्होंने रचना कर डाली है। उनमें से "तामिस्र–मकरालय" प्रसिद्ध और प्रशंसनीय है। यद्यपि इनको विशेष दृष्टि नहीं आता, परन्तु तारे इनकी आँखों में भली–भाँति बैठ गये हैं।

रहे पण्डित शीलदावानल नीति–दर्पण। इनके गुण अपार हैं। समय थोड़ा है, इस हेतु थोड़ा–सा आप लोगों के आगे इनका वर्णन किया जाता है। ये महाशय बाल–ब्रह्मचारी हैं। अपनी आयु भर नीतिशास्त्र पढ़ते–पढ़ाते रहे हैं। इनसे नीति तो बहुत से महात्माओं ने पढ़ी थी परन्तु वेणु, बाणासुर, रावण, दुर्योधन, शिशुपाल, कंस आदि इनके मुख्य शिष्य थे। और अब भी कोई कठिन काम आकर पड़ता है तो अँगरेजी न्यायकर्ता भी इनकी अनुमति लेकर आगे बढ़ते हैं। हम अपने भाग्य की कहाँ तक सराहना करें। ऐसा तो संयोग इस संसार में परम दुर्लभ है। अब आप सब सज्जनों से यही प्रार्थना है कि आप अपने–अपने लड़कों को भेजें और व्यय आदि की कुछ चिंता न करें, क्योंकि प्रथम तो हम किसी अध्यापक को मासिक देंगे ही नहीं और दिया भी तो अभी दस–पाँच वर्ष पीछे देखा जायेगा। यदि हमको भोजन की श्रद्धा हुई तो भोजन का बन्धान बाँध देंगे, नहीं यह नियत कर देंगे कि जो पाठशाला संबंधी द्रव्य हो उसका वे सब मिलकर नास लिया करें।

कठिन शब्दार्थ

पर्यंक – पलंग
कोटि – करोड़
मृगयाशील – शिकाररत
तराई – तलहटी
शृगाल – सियार
क्रिटिक – आलोचक
कामधेनु – इच्छा पूर्ति करने वाली देवताओं की गाय
कन्दरा – गुफा
दूर्वा – दूब, घास

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म स्थान है –
   (क) काशी (ख) पटना (ग) जयपुर (घ) जबलपुर
2. पर्यंक का शब्दार्थ है –
   (क) पलंग (ख) कुर्सी (ग) पाठशाला (घ) देवालय

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

3. लेखक के मन में प्रथम क्या विचार आया?
4. उद्दण्ड पंडित कहाँ से बुलवाये गये थे?
5. ज्योतिष विद्या में कुशल पण्डित का क्या नाम था?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

6. लेखक ने देवालय बनाने का विचार क्यों त्याग दिया?
7. पुस्तक लेखन के विचार पर लेखक क्यों सहम गया?
8. पण्डित प्राणान्तकप्रसाद की क्या विशेषता बताई गई है?

निबंधात्मक प्रश्न –

9. सप्रमाण सिद्ध कीजिये कि भारतेन्दुजी ने इस निबंध में तत्कालीन समाज का चित्र व्यंग के माध्यम उपस्थित किया है।
10. भारतेन्दुजी की शैली पर प्रकाश डालिए।
11. निम्नलिखित पंक्तियों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए –
    (क) इस चलायमान शरीर का कुछ ठिकाना नहीं ..... इस चपल जीवन का क्षण–भर का भरोसा नहीं।
    (ख) समय सागर में एक दिन सब संसार अवश्य मग्न हो जायेगा .... एक तप्त तवे की बूँद हुए बैठे हैं।